International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 285-288

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 285-288
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-03-2017
Accepted: 20-04-2017

डा. सन्जीव कुमार
परा-पी.एचडी. शोधकर्ता,
(आई.सी.एस.एस.आर.,)
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,
भारत

Correspondence
डा. सन्जीव कुमार
परा-पी.एचडी. शोधकर्ता,
(आई.सी.एस.एस.आर.,)
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,
भारत

संस्कृत वाङ्मय में काव्य की अन्त:प्रकृति काव्यार्थ सृजन एवं काव्य वक्रता

डा. सन्जीव कुमार

शोध प्रत्र का उद्देश्य या प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रधान विषय काव्य की अन्त: प्रकृति एवं काव्यार्थ के सृजन में विविध स्त्रोतों की भूमिका का अध्ययन है। प्रत्येक महान् एवं प्रतिनिधि रचना में सभ्यता संस्कृति का इतिहास, ज्ञान, अनुभव, स्मृति, वर्तमान स्थिति, सफलताएं, एवं भविष्य से अपेक्षाएं ये सब एक –दूसरे में घुल मिलकर काव्य संवेदन का सृजन करते हैं। आदिकवि वाल्मीकि विरचित रामायण इसका अन्यतम निर्देशन है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में वाल्मीकि प्रथम कवि हैं और उनका रामायण प्रथम लौकिक काव्य। यह भी उल्लेख नीचे है कि काव्य-विषयक चिन्तन को लेकर विकसित होने वाली विद्या का प्रथम अभिधान भी रामायण प्रस्तुत करता है। काव्यशास्त्र का आगे चलकर भामह दण्डी प्रवृत्ति आचार्यों की कृतियों में यह शास्त्र अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र और काव्यशास्त्र आदि संज्ञा को प्राप्त करतागया।

संस्कृत वाङ्मय में काव्य की अन्त:प्रकृति काव्यार्थ सृजन एवं काव्य वक्रता

शास्त्र विषयों में विद्वता के निरन्तर काव्यों के अनुशीलन एवं अभ्यास से समृद्ध होती है। [1] इसके अतिरिक्त काव्य, कवि के निरन्तर लोक-जीवन के अनुभवों, अनुशीलन, शास्त्रों के निरन्तराभ्यास,विभिन्न शास्त्रों के अवलोकन एवं अनुसन्धान, विभिन्न काव्यकृतियों के चिन्तन एवं मनन के साथ इतिहास इत्यादि के निरीक्षण-परीक्षण का परिणाम होता है। [2] काव्यशास्त्र का प्राचीनतम अभिधान 'क्रियाकल्प' [3] है। काव्य का निर्माण ही कवि का कर्म है [4] जिसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। कवि का प्रेरक तत्त्व क्या है? काव्य की प्रेरणा कहां से प्राप्त होती है? ऐसा स्वीकार किया जाता है कि लोकोत्तरवर्णन कवि ही काव्य में लोकोत्तर-आह्लादकता को उत्पन्न करता है। लेकिन लोक से भिन्न काव्यतत्त्वों का दर्शन कोई सामान्य उद्योग नहीं। काव्य के मानसिक धरातल पर जब कवि तथ्यों को स्थापित करता है तो वह प्रत्येक घटनाक्रम को इस प्रकार स्थापित करता है जिससे काव्य के आस्वादक को काव्य के अर्थ का निर्विघ्नपूर्वक ज्ञान हो जाए। सर्वप्रथम कवि काव्य के साथ संवाद करता है फिर उसे अपनी प्रतिभा और व्युत्पत्ति से प्राप्त नवीन शब्दों का चयन करता हुआ उसे काव्य में स्थापित करता है। कवि की अपूर्व [5] प्रतिभा से काव्य में नवीनता का आधान होता है, और काव्य के आस्वादक जनों को आह्लादित करता है। काव्य के विशिष्ट तात्विक अर्थ केवल काव्य के मर्मभेद को जानने वाले काव्यतत्त्वज्ञजनों को ही संवेद्य होता

है। लेकिन ऐसा भी नहीं कि सामान्य (काव्यतत्व के ज्ञाता से भिन्न) जनों के लिए इसका कोई भी औचित्य नहीं। भरतमुनि काव्य का प्रयोजन संवितविश्रान्ति [6] है ऐसा स्वीकार करते हैं। इसके साथ-साथ सामाजिक नाट्य या काव्य का सुमनस प्रेक्षक [7] होता है जो नाट्य के रस का आस्वाद करता है। सुमनस और प्रेक्षक के विषय में यहां प्रश्न उठता है कि सुमनस कौन है? जैसा कि शब्द से अभिमत है कि सुमनस ऐसे जन स्वीकार किए जाने चाहिए जिन्हें नाट्यकाव्य के मार्मिक विषयों का भली-भांति ज्ञान हो और काव्यशास्त्रीय विधा में काव्यतत्त्वज्ञ [8] या सचेतसजन [9] भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त प्रेक्षक की श्रेणी में वे सभी सामाजिकजन स्वीकार किए जा सकते हैं जो नाट्य की प्रेक्षा (सामान्य या विशेष दर्शन) करते हैं। यहां प्रेक्षा का सम्बन्ध द्रष्टा के मन में नाट्य के दर्शनमात्र से उद्बुद्ध होने वाले विभिन्न भावों से है। इसलिए सुमनस काव्यतत्त्वज्ञ हैं अर्थात् काव्य के समीक्षक हैं। कवि की अवधारणा के विषय कोषग्रन्थों [10] में प्रमाण मिलता है, ऋषि ही मुख्यत: कवि होता था। इसलिए रामायण के रचयिता को आदिकवि [11] कहा गया।

काव्य के निर्माण में प्रेरणा का अत्यन्त महत्त्व है। [12] आनन्दवर्धन का कथन है कि मेधावीजनों की बुद्धियां संवादिनी होती हैं। [13] ध्वनिकार का कथन यहां इस बात की ओर संकेत करता है कि काव्य की प्रेरणा का मूल स्रोत जगत है। जिसमें निरन्तर नवीन उन्मेषों का उद्भव होता रहता है। मेधाविन् कवियों की बुद्धि उस नवीन उन्मेष से संवाद करने में सक्षम होती है, जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण में क्रौञ्च पक्षि का रूदन से ऋषि का विह्वल हो जाना शोक का श्लोक के रूप में फूटना नवीन उन्मेष का उदाहरण है। यहां कवि-शोक स्वगत न होकर उसके लिए प्रेरणा बन गया। और इस प्रकार रामायण नामक महाकाव्य की रचना हुई। लोक में सभी प्रकार की विधाएं आ जाती हैं। कुछ इसे कवि की अनुकरण, [14] प्रतिभा स्वीकार करते हैं जबकि कुछ दैवीय संस्कार [15] से युक्त प्रतिभा। संस्कृत साहित्य जगत् इसे केवल कल्पना स्वीकार नहीं करता अपितु पूर्वजन्म से संस्कारों से युक्त स्वीकार करता है। [16]

दण्डी का मत है कि काव्य की श्री-समृद्धि कवि की स्वाभाविक प्रतिभा पर निर्भर होती है। तथा उसके द्वारा व्युत्पत्तिपरक सतत एवं निरन्तर अभ्यास पर। [17] अर्थात् काव्य के लिए उद्योग करने वाले कवि को निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। जिसके लिए वह सर्वथा उद्यमशील रहता है। भामह काव्य के लिए कवि प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी आवश्यक स्वीकार करते हैं।

काव्य का प्रेरणीय कौन-सा है? काव्य की प्रेरणा के विषय में राजशेखर का मत है कि काव्यों या शास्त्रों के निरन्तराभ्यास और अनुशीलन कवियों को काव्य रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। [18] इसलिए कवि का शास्त्रों में पारंगत होना [19] आवश्यक रूप से स्वीकार किया जाता है।

अर्थ के सम्बन्ध में वैशेषिकों का मत है [20] कि अर्थ की जो प्रतीति है वह सामाजिक, सांकेतिक है। आनन्दवर्धन काव्य में वाच्य और प्रतीयमान अर्थ नामक दो प्रकार के भेद [21] स्वीकार करते हैं जबकि मम्मट [22] (मीमांसकमतानुयायी) अर्थ के तीन भेद (वाच्य लक्ष्य और व्यंग्य) स्वीकार करते हैं। काव्य की संरचना एवं सगठना के कुन्तक काव्य-वक्रता [23] को स्वीकार करते हैं जबकि काव्य में काव्य हेतु आनन्दवर्धन का मत है कि दूसरे के विषय को ग्रहण से विरत मन वाले सुकवि के यह सरस्वती भगवती ही यथेष्टवस्तु को घटित करती है। [24] ध्वनिकार का कथन स्पष्टत: उस अपूर्व वस्तु की प्रेरणा दैवीय इच्छा के अधीन होती है। इसी तथ्य को अभिनवगुप्त [25] भी स्वीकार करते हैं।

साहित्य की काव्य मीमांसा से प्रेरित होकर (भामह दण्डी वामन कुन्तक आनन्दवर्धन मम्मट इत्यादि) आचार्यों ने काव्यजगत् को नवीन चिन्तन की ओर उन्मुख किया है। काव्य को उद्देश करके काव्य के विभिन्न बिन्दुओं को अपनी चिन्तन एवं प्रतिभा से अलंकृत किया है। भामह का मत है कि प्रतिभा के अभाव में काव्य रचना सम्भव नहीं। [26] ध्वनिकार कवि प्रतिभा का अर्थ आलोक सामान्य, एक असाधारण प्रतिभा विशेष जिसमें काव्य स्वयं ही अभिव्यक्त हो जाता है। [27] रस से परिपूर्ण भावरूप और अर्थ को प्रवाहित करने वाली ऐसी महाकवियों की वाणी (आलौकिक) परिस्फुरित होते हुए प्रतिभा विशेष को अभिक्त करती है। अर्थात् महाकवियों की वाणी में आलौकिकता का आधान करने वाली प्रतिभा समरूप होती है। इसके अतिरिक्त यदि प्रतिभा हो तो काव्य के अर्थतत्त्वों का अन्त नहीं। काव्य निर्णय में कवि की प्रतिभा ही काव्यस्वरूप में अवतीर्ण होकर उसकी व्युत्पत्ति के रूप में सहस्रधा प्रतिफलित पायी जाती है। [28]

आचार्य मम्मट का काव्यहेतु के विषय में विचार पूर्वाचार्यों के मतों से अत्याधिक विशाल है। उन्होंने काव्य के छ: हेतु [29] स्वीकार किए हैं। ध्वनिकार दो प्रकार के कवियों का उल्लेख करते हैं एक वह जो प्रतिभा से युक्त हैं और दूसरे वे जो प्रतिभा से रहित। अर्थात् केवल शास्त्रों के श्रवण अथवा मनन से काव्य रचना में प्रवृत्त हो जाते हैं। यहां ध्वनिकार का मत है कि उत्कृष्ट कवि वही है जिसमें प्रतिभा विद्यमान हो। अभिनवगुप्त ने लोचनटीका [30] में स्पष्ट किया है- शक्ति अर्थात् प्रतिभान् वर्णनीय वस्तु के सम्बन्ध में नवीन बात की उल्लेखशालिता। अर्थात् जब कवि अपनी प्रतिभा के बल पर सामान्यवस्तु में विशेष का आधान करे और उससे नवीन अर्थ का सृजन हो तो वहां कवि की विशिष्ट प्रतिभा उसमें मूलभूत कारण होती है। राजशेखर का कथन है कि वह शक्ति या प्रतिभा काव्य रचना में प्रधान हेतु होती है, और वह शक्ति प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से सम्पन्न होती है। शक्ति

वाले को ही प्रतिभा आती है और शक्ति सम्पन्न ही व्युत्पन्न होता है। [31]

जिस प्रकार प्रतिभा काव्य में चमत्कार के आधान का हेतु है उसी प्रकार काव्य की संरचना भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। काव्यशास्त्रीय परम्परा में काव्य का निर्माण और उसकी उत्कृष्टता की ज्ञातता हेतु कुछ आवश्यक मानदण्डों को स्थापित किया गया है। कवि की रचना का निर्णय करने वाला शास्त्र होता है। इसलिए साहित्याचार्य उसके दो विभाजन स्वीकार करते हैं-काव्य और शास्त्र। [32] काव्य शास्त्र का अनुगमन करता है। काव्य की संरचना के विषय में कुन्तक का मत है कि काव्य को वक्रयुक्त होना चाहिए। काव्य में वक्रता क्या है? वक्रता को लोकोत्तरचमत्कार और वैचित्र्य से इंगित किया गया है। [33] आचार्य भामह ने काव्यालंकार में काव्यार्थ स्रोतों की चर्चा की है। उनका मत है कि काव्य रचना शब्द, छन्दादि के अभिधान और इतिहास पर आश्रित होती है। इसलिए उनके अनुसार काव्य रचना के जिज्ञासु को व्याकरण, छन्द, कोष, अर्थ, इतिहासाश्रित कथाएं, लोकव्यवहार, तर्कशास्त्र और कलाओं का काव्य रचना के लिए मनन करना चाहिए तथा शब्द और अर्थ का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके, काव्यज्ञों की उपासना कर और अन्य रचनाओं को देखकर काव्य प्रणयन में प्रवृत्त होना चाहिए। [34]

प्रबन्ध वक्रता और काव्य रचना वैविध्य

काव्यवक्रता: काव्यवक्रता काव्यमर्मज्ञों के आह्लादकारक सुन्दर, कवि व्यापार से युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। [35]

1. मूलरसपरिवर्तन वक्रता: कुन्तक का कथन है कि जब कवि, किसी पुरातन काव्य ग्रन्थ या इतिहास को आधार बनाता है किन्तु नवीनता और रसमयता लाने के आग्रह के कारण अपने काव्य में उसी स्रोत स्वरूप काव्यग्रन्थ का इतिहास अंश के मूल के रस को स्वीकार न करके, अन्य किसी मनोहर रस को अंगी रस के रूप में स्थापित करता है, प्रबन्धरस परिवर्तन वक्रता होती है। यहां ऐतिहासिक काव्य से सामग्री से लेकर नवीन काव्य रचना की उत्पत्ति की स्थिति को उदभासित करता है। जैसे शांत रस पर आधारित रामायण से भास द्वारा प्रतिमानाटक की रचना। इसको मूल परिवर्तन वक्रता कहा गया है। [36]

2. समापन वक्रता: जहां श्रेष्ठ कवि तीनों लोकों में अपूर्व वर्णन के कारण नायक के उत्कर्ष को पुष्ट करने वाले इतिहास के विशिष्ट अंश से, उसके बाद की कथा में विद्यमान नीरसता का परित्याग करने की इच्छा से, प्रबन्ध समापन कर दे। [37] इसका तात्पर्य है कि जब कवि किसी विषय की रचना के लिए उद्यत होता है तो पुराअने कथासूत्र को लेकर अपने मन-मस्तिष्क में किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नवीन भाव का अनुभव करता है। उससे वह नवीन कल्पना के माध्यम से पुरानी कथा में पुनर्भावन करता है और उसे नवीन स्वरूप देता है। कवि के मन के भीतर ही ऐसा कोई चरमबिन्दु विद्यमान रहता है जिससे कथा के नायक और नायिका को उत्कर्ष की प्राप्ति हो जाती है। अत: यहां कवि की प्रतिभाजन्य कल्पना ही सर्वोत्कृष्ट है जिसके माध्यम से सहृदय को आह्लादकारी स्थिति तक पहुंचा देती है।

3. कथा-विच्छेद वक्रता: कथा विच्छेद वक्रता वह होती है जहां प्रधान वस्तु का सम्बन्ध का तिरोधान कर देने वाले दूसरे विघ्न से विच्छिन्न एवं नीरस हो गई कथा, वहीं उस कार्य की सिद्धि जाने से प्रबन्ध की निर्विघ्न रस से दैदीप्यमान किसी अपूर्व वक्रता को पुष्ट करती है। [38] भवभूति द्वारा *उत्तररामचरित* नाटक में कवि का उद्देश्य सीता के त्याग के पश्चात् उनके वनवास की कथा, लव कुश क जन्म, दोनों को सीता के द्वारा बडा करना और फिर अश्वमेध यज्ञ द्वारा राम से पुनर्मिलन करवाना मात्र नहीं अपितु कथा के मूल में है वह द्वन्द्व जो राम के हृदय को मथता है कि समष्टि के लिए व्यष्टि को बलि देनी पडेगी। इतिहास विवश होने पर कई बार ऐसे कर्म करने पडते हैं जिनसे मानुषी आत्मा विह्वल हो उठती है जैसे आसन्न प्रसवा सीता का परित्याग। और अन्त में भी सीता द्वारा लव-कुश को राम के सुपुर्द करना और स्वयं का धरती की गोद में समा जाना। भवभूति ने यहां एक ऐसा प्रसङ्ग प्रस्तुत किया कि सहृदयों के हृदय करूण-रस की स्थिति को प्राप्त हुए विना नहीं रह सकते।

4. आनुवंशिक फल-वक्रता: जब किसी प्रबन्ध में आनुवंशिक फल योजना द्वारा सौन्दर्य का आधान होता है, तब उसे आनुवंशिक फल वक्रता कहते हैं। [39] अर्थात् जब कवि अपने प्रबन्ध के नायक को किसी एक विशिष्ट फल (लक्ष्य) की ओर प्रयत्नशील चित्रित करता है लेकिन प्रबन्ध का नायक का व्यक्तित्व इतना महिमामयहै कि विना याचना के अनेक फलों की प्राप्ति हो जाती है, वहां आनुवंशिक फल वक्रता है जैसे; *नागानन्द* नाटक।

5. नामकरण वक्रता: नामकरण वक्रता में काव्य में प्रतिपाद्य वस्तु के सौन्दर्य को छुए विना केवल प्रधान योजना के चिन्ह वाले नाम द्वारा भी कवि वक्रता का आधान कर देता है। विदग्ध कवि वस्तुगत सौन्दर्य अर्थात् कला-विधान में चमत्कार की सृष्टि करना ही है, कभी-कभी केवल नामकरण

में भी वह उस अपूर्व कौशल का प्रयोग करता है जिससे नाम के द्वारा ही मूल कथा के रहस्य का पता चल जाता है। [40] उससे मूल कथा के रहस्य को जागृत करता हुआ सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट करता है। *मुद्राराक्षस, मेघदूत, मृच्छकटिकम, अभिज्ञानशाकुन्तलम्* इसके उदाहरण हैं जिनके शीर्षकों के आधार पर ही कथा का अनुमान किया जा सकता है।

6. तुल्य-कथा वक्रता: जब कवि या रचनाकार, एक ही मूलकथा को लेकर प्रबन्ध काव्य की रचना करते हैं, किन्तु उनकी निजी प्रतिभा के कारण वे विभिन्न प्रबन्ध, एक दूसरे से सर्वथा पृथक् और असमान होने के कारण अपूर्व वक्रता को जन्म देते हैं। [41] कवि की रचना-शक्ति ही अनन्त रस का उत्स है। कवि की प्रतिभा के बल पर ही कथा के लिए प्रसङ्ग विविध रूपों में खिल उठते हैं। उदाहरण के लिए रामायण पर आधारित नाटक, *प्रतिमानाटक, बालरामायण, रघुवंश* इत्यादि।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यालंकार (भामह) १/२ ।
2. लोकस्य स्थावरजङ्गमात्मकलोकवृत्तस्य शास्त्रां छन्दो व्याकरणाभिधान-कोशकला...ये जानन्ति तदुपदेशेन करणे योजने च पौन:पुन्येन प्रवृत्तिरिति त्रय समुदिता न तु व्यस्तास्य काव्यस्योद्भवे निर्माण समुल्लासे च हेतुर्न तु हेतव: । का. प्र. १/२ ।
3. क्रियाकल्पविदश्चैव विदो जना:। वा. रा. ७/९४/७ ।
4. व.जी., १/२ ।
5. अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा: प्रज्ञा प्रतिभा। ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन,१/२ ।
6. ना. शा., भरतमुनि, ६/३२ ।
7. ना. शा., भरतमुनि, ६/३२ ।
8. शब्दार्थशासनमात्रैणेव न वेद्यते। वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्। ध्वन्या., आनन्दवर्धन, १/२।
9. तद्वत्सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम्। बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते॥ ध्वन्या.,१/२ ।
10. उणादि-पदानुक्रम-कोष:, ४/१४० ।
11. ध्वन्या., आनन्दवर्धन, १/५ ।
12. वा. रा. बालकाण्ड, १/१ ।
13. संवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्। ध्वन्या., आनन्दवर्धन, ४/११ ।
14. नगेन्द्र, विश्व साहित्यशास्त्र, पृ.१७१ ।
15. नगेन्द्र, विश्व साहित्यशास्त्र, पृ.१६३ ।
16. का. मी., राजशेखर,चतुर्थ अध्याय ।
17. नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्। अमन्दश्चाभियोगोऽस्या: कारणं काव्यसम्पद: । का. द., दण्डी, प्रथम परिच्छेद, पृ.१०३ ।
18. का. मी., राजशेखर, चतुर्थ अध्याय ।
19. का. प्र., मम्मट, १/२ ।
20. सामयिक: शब्दार्थसम्प्रत्यय: । वै.द., ७/२/२० ।
21. ध्वन्या., आनन्दवर्धन, १/६ ।
22. का. प्र., मम्मट, २/७ ।
23. व.जी., कुन्तक, १/२ ।
24. परास्वादानेच्छाविरतमनसोवस्तु सुकवे:। सरस्वत्येवैषा घटयति यथेष्टं भगवती॥ ध्वन्या. आनन्दवर्धन,४/१७ ।
25. अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां--- सरस्वत्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते॥ ध्वन्या., आनन्दवर्धन, १ ।
26. काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावत: । का.(भा.), १/५ ।
27. सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्। आलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम॥। ध्वन्या., आनन्दवर्धन, १/६ ।
28. न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुण: । तथैव, ४/६।
29. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्ष्याभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥ का. प्र., मम्मट, १/२ ।
30. शक्ति: प्रतिभानं वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्वम्। ध्वन्या., आनन्दवर्धन, ३/५ ।
31. सा शक्ति केवलं काव्ये हेतुरिति यायावरीय: । विस्प्रसृतिश्च सा प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्याम्। का.मी.,राजशेखर चतुर्थ अध्याय।
32. का.मी., राजशेखर, द्वितीय अध्याय।
33. वन्दे कवीन्द्रवक्त्रेन्दुलास्यमन्दिरनर्तकीम्। देवीं सूक्तिपरिस्पन्दसुन्दराभिनयोज्वलाम्॥लोकोत्तरचमत्कार कारिवैचित्र्यसिद्धये। व.जी., कुन्तक,१/१,२।
34. शब्दश्छन्दोभिधानार्था इतिहासाश्रया: कथा:.....काव्यक्रियादर:। का.(भा.), १/९/,१०।
35. शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापार शालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥ व.जी.,कुन्तक, १/७।
36. व.जी., कुन्तक, ४/१६,१७ ।
37. व.जी.,कुन्तक,४/१८,१९ ।
38. तथैव, ४/२०,२१ ।
39. तथैव, ४/२२,२३ ।
40. व.जी.,कुन्तक, ४/२४ ।
41. तथैव, ४/२५ ।